

६७. अभयघोषमुनेराख्यानम् ।

संप्रणम्य जिनाधीशं सुराधीशैः समर्चितम् । मुनेरभयघोषस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
 काकन्दीनगरे राजा संजातोभयघोषवाक् । राज्ञी चाभयमत्याख्या तस्याभूत्प्राणवल्लभा ॥२॥
 एकदाभयघोषेण पुरबाह्यं गतेन च । चतुष्पादेषु संबध्वा जीवन्तं कच्छपं दृढम् ॥३॥
 स्कन्धे यष्ट्यां विधायैव समागच्छंश्च धीवरः । दृष्टो राज्ञा स्वचक्रेण पापतोऽज्ञानभावतः ॥४॥
 चत्वारः कच्छपस्याशु छिन्नाः पादाः प्रमादिना । हन्ति पापीजनो जन्तून्विना न्यानेन दुष्टधीः ॥५॥
 कच्छपोसौ महाकष्टं मृत्वा तस्यैव भूपतेः । चण्डवेगः सुतो जातः कृत्वाकामप्रनिर्जराम् ॥६॥
 एकदासौ महीनाथः सुधीरभयघोषवाक् । चन्द्रग्रहणमालोक्य जातो वैराग्यमण्डितः ॥७॥
 अहो पापी दुरात्माहं जैनतत्त्वपराङ्मुखः । मोहान्धतमसाक्रान्तो महान्धे लोचने सति ॥८॥
 हिताहितं न पश्यामि मूढोहं पापमण्डितः । कथं संसारवारांशेः पारं यास्यामि निर्मलम् ॥९॥

६७. अभयघोष मुनि की कथा

देवों द्वारा पूजा भक्ति किए गए जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर अभयघोष मुनि का चरित्र लिखा जाता है ॥१॥

अभयघोष काकन्दी के राजा थे उनकी रानी का नाम अभयमती था । दोनों में परस्पर बहुत प्यार था । एक दिन अभयघोष घूमने को जंगल में गए हुए थे । इस समय एक मल्लाह एक बहुत बड़े और जीवित कछुए के चारों पाँव बाँध कर उसे लकड़ी में लटकाये हुए लिए जा रहा था । पापी अभयघोष की उस पर नजर पड़ गई उन्होंने मूर्खता के वश ही अपनी तलवार से उसके चारों पाँवों को काट दिया । बड़े दुःख की बात है कि पापी लोग बेचारे ऐसे निर्दोष जीवों को निर्दयता के साथ मार डालते हैं और न्याय-अन्याय का कुछ विचार नहीं करते ! कछुआ उसी समय तड़फड़ा कर गत प्राण हो गया । मरकर वह अकाम-निर्जरा के फल से इन्हीं अभयघोष के यहाँ चण्डवेग नाम का पुत्र हुआ ॥२-६॥

एक दिन राजा को चन्द्र-ग्रहण देखकर वैराग्य हुआ । उन्होंने विचार किया जो एक महान् तेजस्वी ग्रह है, जिसकी तुलना कोई नहीं कर सकता और जिसकी गणना देवों में है, वह भी जब दूसरों से हार खा जाता है तब मनुष्यों की तो बात ही क्या ? जिनके सिर पर काल सदा चक्कर लगाता रहता है । हाय, मैं बड़ा ही मूर्ख हूँ जो आज तक विषयों में फँसा रहा और कभी अपने हित की ओर मैंने ध्यान नहीं दिया । मोह रूपी गाढ़े अँधेरे ने मेरी दोनों आँखों को ऐसा अन्धा बना डाला, जिससे मुझे अपने कल्याण का रास्ता देखने या उस पर सावधानी के साथ चलने को सूझ ही न पड़ा । इसी मोह के पापमय जाल में फँस कर मैंने जैनधर्म से विमुख होकर अनेक पाप किए । हाय, मैं अब इस संसाररूपी अथाह समुद्र को पार कर सुखमय किनारे को कैसे प्राप्त कर सकूँगा ? प्रभो, मुझे

अतः परं महाघोरं तपः कृत्वा जिनोदितम्। अनादिकालसंलग्नाञ्जित्वा कर्ममहारिपून् ॥१०॥
 मुक्तिकान्ताकरस्पर्शं संकरोमि सुखप्रदम्। इत्यादिकं विचार्योच्चैः स्वचित्ते चतुरोत्तमः ॥११॥
 दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय चण्डवेगाय वेगतः। दीक्षामादाय जैनेन्द्रीमिन्द्रियाणां प्रदण्डिनीम् ॥१२॥
 गुरुं नत्वा मुनिर्भूत्वा संसाराम्भोधितारणम्। जन्ममृत्युजरातंक-कुपङ्कक्षयकारिणम् ॥१३॥
 एकाकी सुतपः कुर्वन्विहरंश्च महीतले। काकन्दीनगरोद्याने स्थितो वीरासनेन सः ॥१४॥
 पूर्ववैरेण पापात्मा चण्डवेगश्च पुत्रकः। तत्रायातस्तदा तस्य मुनीन्द्रस्य महाधियः ॥१५॥
 छिनत्ति स्म स्वचक्रेण हस्तौ पादौ च मूढधीः। अज्ञानी धर्महीनस्तु किं पापं यत्करोति न ॥१६॥
 मुनीन्द्रोभयघोषस्तु तत्क्षणे ध्यानतत्परः। केवलज्ञानमुत्पाद्य संप्राप्तो मोक्षमक्षयम् ॥१७॥
 अहो जीवस्य सच्छक्तिर्महाश्चर्यं प्रवर्तते। क्व कष्टं दारुणं दिव्यं क्व च ध्यानं शिवप्रदम् ॥१८॥

शक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं आत्मिक सच्चा सुख पा सकूँ। इस विचार के बाद उन्होंने निश्चित किया कि जो हुआ सो हुआ। अब भी मुझे अपने कर्तव्य के लिए बहुत समय है। जिस प्रकार मैंने संसार में रहकर विषय सुख भोगा, शरीर और इन्द्रियों को खूब सन्तुष्ट किया, उसी तरह अब मुझे अपने आत्महित के लिए कड़ी से कड़ी तपस्या कर अनादि काल से पीछा किए हुए इन आत्मशत्रुरूपी कर्मों का नाश करना उचित है, यही मेरे पहले किए कर्मों का पूर्ण प्रायश्चित्त है और ऐसा करने से ही मैं शिवरमणी के हाथों का सुख-स्पर्श कर सकूँगा। इस प्रकार स्थिर विचार कर अभयघोष ने सब राजभार अपने कुँवर चण्डवेग को सौंप जिन दीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटाकर उन्हें आत्मशक्ति के बढ़ाने को सहायक बनाती है। इसके बाद अभयघोष मुनि संसार-समुद्र से पार करने वाले और जन्म-जरा-मृत्यु को नष्ट करने वाले अपने गुरु महाराज को नमस्कार कर और उनकी आज्ञा ले देश विदेशों में धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विचार कर गए। इसके कितने वर्षों बाद वे घूमते-फिरते फिर एक बार अपनी राजधानी काकन्दी की ओर आ निकले। एक दिन वे वीरासन से तपस्या कर रहे थे। इसी समय उनका पुत्र चण्डवेग इस ओर आ निकला। पाठकों को याद होगा कि चण्डवेग की और इसके पिता अभयघोष की शत्रुता है। कारण चण्डवेग पूर्व जन्म में कछुआ था और उसके पाँव अभयघोष न काट डाले थे। चण्डवेग की जैसे ही इन पर नजर पड़ी उसे अपने पूर्व की घटना याद आ गई उसने क्रोध से अन्धे होकर उनके भी हाथ पाँवों को काट डाला। सच है धर्महीन अज्ञानी जन कौन पाप नहीं कर डालते ॥७-१६॥

अभयघोष मुनि पर महान् उपसर्ग हुआ, पर वे तब भी मेरु के समान अपने कर्तव्य में दृढ़ बने रहे। अपने आत्मध्यान से वे रतीभर भी न डिगे। इसी ध्यान बल से केवलज्ञान प्राप्त कर अन्त में उन्होंने अक्षयान्त मोक्ष लाभ किया। सच है, आत्मशक्ति बड़ी गहन है, आश्चर्य पैदा करने वाली है। देखिए कहाँ तो अभयघोष मुनि पर दुःसह कष्ट का आना और कहाँ मोक्ष प्राप्ति का कारण दिव्य आत्मध्यान ॥१७-१८॥

जित्वाशेषपरीषहान्दृढतरान्हत्वा च मोहादिकान्नाना जन्मशतोरुकष्टजनकान्क्षिप्त्वाशु कर्मारिकान्।
संप्राप्तोक्षयमोक्षसौख्यमतुलं स श्रीजिनः शं क्रियात्संपूज्योभयघोषनामकलितो नित्यं सतां सेवितः ॥१९॥
इति कथाकाशे श्रीमदभयघोषमुनेराख्यानं समाप्तम्।

६८. श्रीविद्युच्चरमुनेराख्यानम्

सर्वसौख्यप्रदं नत्वा जिनेन्द्रं भुवनोत्तमम्। वक्ष्ये विद्युच्चराख्यानं विख्यातं मुनिभाषितम् ॥१॥
मिथिलाख्यपुरे राजा सुधीर्वामरथोभवत्। तत्पुत्रो यमदण्डोभूच्चोरो विद्युच्चरो महान् ॥२॥
नाना विज्ञानसम्पन्नो निष्पन्नश्चोरकर्मणि। दिनेऽसौ कुष्ठिरूपेण चोरो मायायुतस्तदा ॥३॥
क्वचिद्वेवकुले शून्ये रंको भूत्वा च तिष्ठति। रात्रौ दिव्यनरो भूत्वा चोरो भोगान्करोति च ॥४॥
एकदा तस्य भूपस्य रात्रौ हारं गृहीतवान्। प्रभाते यमदण्डाख्यं राजा वामरथोवदत् ॥५॥
चोरेण दिव्यरूपेण मोहयित्वा च मां पुनः। हारो मे संहतः शीघ्रं यमदण्ड समानय ॥६॥
तं हारं सप्त रात्रिभिर् नान्यथा निग्रहं तव। करिष्यामीति तच्छ्रुत्वा तत्पुत्रः स विचक्षणः ॥७॥

सत्पुरुषों द्वारा सेवा किए गए वे अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्ष का सुख दें, जिन्होंने दुःसह परीषह को जीता, आत्मशत्रु राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को नष्ट किया और जन्म-जन्म में दारुण दुःखों के देने वाले कर्मों का क्षय कर मोक्ष का सर्वोच्च सुख, जिस सुख की कोई तुलना नहीं कर सकता, प्राप्त किया ॥१९॥

६८. विद्युच्चर मुनि की कथा

सब सुखों के देने वाले और संसार में सर्वोच्च गिने जाने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर शास्त्रों के अनुसार विद्युच्चर मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

मिथिलापुर के राजा वामरथ के राज्य में इनके समय कोतवाल के ओहदे पर एक यमदण्ड नाम का मनुष्य नियुक्त था। वहीं एक विद्युच्चर नाम का चोर रहता था। यह अपने चोरी के फन में बड़ा चलता हुआ था। सो यह क्या करता कि दिन में तो एक कोढ़ी के वेष में किसी सुनसान मन्दिर में रहता और ज्यों ही रात होती कि एक सुन्दर मनुष्य का वेष धारण कर खूब मजा-मौज मारता। यही ढंग इसका बहुत दिनों से चला आता था। पर इसे कोई पहचान न सकता था। एक दिन विद्युच्चर राजा के देखते-देखते खास उन्हीं के हार को चुरा लाया। पर राजा से तब कुछ भी न बन पड़ा। सुबह उठकर राजा ने कोतवाल को बुलाकर कहा-देखो, कोई चोर अपनी सुन्दर वेषभूषा से मुझे मुग्ध बनाकर मेरा रत्न-हार उठा ले गया है। इसलिए तुम्हें हिदायत की जाती है कि सात दिन के भीतर उस हार को या उसके चुरा ले जाने वाले को मेरे सामने उपस्थित करो, नहीं तो तुम्हें इसकी पूरी सजा भोगनी पड़ेगी। जान पड़ता है तुम अपने कर्तव्य पालन में बहुत त्रुटि करते हो। नहीं तो राजमहल में से चोरी हो जाना कोई कम आश्चर्य की बात नहीं है। “हुक्म हुजूर का” कहकर कोतवाल चोर के ढूँढ़ने को